तृतीय अध्याय

जीवनीपरक उपन्यास 'विवेकानन्द' की कथावस्तु

तृतीय अध्याय

जीवनीपरक उपन्यास 'विवेकानन्द' की कथावस्तु

विषय प्रवेश

3.1 कथावस्तु : अर्थ एवं परिभाषा

3.2 कथावस्तु विभाजन

अ) कथानक

1) अधिकारिक कथा

2) प्रासंगिक कथा

ब) विषयवस्तु

3.3 'विवेकानन्द' उपन्यास की कथावस्तु

निष्कर्ष।

तृतीय अध्याय

जीवनीपरक उपन्यास 'विवेकानन्द' की कथावस्तु

विषय प्रवेश :

परंपरागत रूप में कथा साहित्य को निर्धारित करने के लिए विद्वानों ने छः तत्त्व निर्धारित किए हैं। इसमें प्रथम एवं अत्यावश्यक तत्त्व है, कथावस्तु। कथा साहित्य की रचना किसी न किसी प्रकार के उद्देश्य को सामने रखकर की जाती है। उस उद्देश्य की अभिव्यक्ति के लिए घटना एवं प्रसंग की रचना की जाती है। जिनके माध्यम से कथ्य रोचक एवं नाटकीय रूप में पाठक सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

'विवेकानन्द' उपन्यास की कथावस्तु को जानने से पहले हम कथावस्तु से क्या तात्पर्य है और उसके प्रकार कौन-कौन से हैं, इस संदर्भ में संक्षेप में विचार करेंगे।

3.1 कथावस्तु : अर्थ एवं परिभाषा :

'कथावस्तु' यह शब्द 'कथा' एवं 'वस्तु' इन शब्दों के मिलाप से बना है। कथा का अर्थ है घटनाओं का संयोजन। वस्तु का अर्थ - विषयवस्तु या उद्देश्य के रूप में लिया जाता है। घटनाओं के संयोजन से निर्मित कथा के माध्यम से विषयवस्तु संप्रेषित होती है। यह दोनों चीजे एक-दूसरे पर आधारित है। विषयवस्तु अथवा उद्देश्य के आधार पर घटनाओं की रचना की जाती है और घटना-प्रसंगों के माध्यम से विषयवस्तु प्रस्तुत होती है।

जीवनीपरक उपन्यास के संदर्भ में कथावस्तु महत्त्वपूर्ण एवं अत्यावश्यक तत्त्व है। जीवनीपरक उपन्यास की रचना विशिष्ट व्यक्ति के जीवन-चरित्र को लेकर की जाती है। अतः उसके जीवन को दर्शाने के लिए घटनाओं का चयन करना पड़ता है। घटनाओं की उपस्थिति दिखाने के लिए प्रसंगों की रचना की जाती है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कथावस्तु को निम्न रूप में परिभाषित कर सकते हैं :-

"रचना के उद्देश्य को ध्यान में रखकर विषयवस्तु के संप्रेषण के लिए विविध प्रसंगोद्वारा उपस्थित घटनाओं के संयोजन को कथावस्तु कहते है।"

उपर्युक्त परिभाषा में 'घटनाओं का संयोजन' यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। क्योंकि घटनाओं के संयोजन के बिना किसी भी कथा साहित्य का स्वरूप खड़ा करना असंभव है।

घटनाओं के अभाव में वह रचना कथा-साहित्य की कोटि में न आकर निबंध या एकालाप हो सकती है।

3.2 कथावस्तु विभाजन :

कथावस्तु को हम मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित करते हैं।

अ) कथानक ब) विषयवस्तु

अ) कथानक :

सभी कथात्मक विधाओं में मानवीय जीवन से संबंधित अनेक छोटी-बड़ी घटनाओं की मालिका होती है। इन मालिकाओं का संयोजन ही कहानी का कथानक कहलाता है। यह जीवनीपरक उपन्यास का भी आधारभूत तत्त्व है। इस कथानक के माध्यम से ही उद्देश्य की प्राप्ती होती है।

आज अनेक उपन्यासों में घटनाओं का सम्मेलन इतनी सूक्ष्मता से हो रहा है कि उनमें कथानक हीनता जैसी स्थिति उत्पन्न होती है; लेकिन कथा-साहित्य से कथानक को पूर्णत: हटाया नहीं जा सकता। कथानक तो कथा साहित्य की नींव का काम करता है। जीवनीपरक उपन्यासों का वह प्रमुख आधार है। जीवनीपरक उपन्यासों में तो कथानक की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है; क्योंकि यह विधा व्यक्ति विशेष के जीवन-चरित्र को केंद्र में रखकर प्रस्तुत की जाती है।

✱ कथानक के प्रकार :

घटनाओं की प्रमुखता से कथानक को दो भागों में विभाजित किया जाता है। जो निम्न प्रकार है :-

1) आधिकारक कथा (मुख्य कथानक)

2) प्रासंगिक कथा (गौण कथानक)

उपन्यास में मुख्य पात्र के चारों ओर केंद्रित घटना को 'प्रधान अथवा आधिकारिक' कथा कहते है। मुख्य पात्र से संबंधित घटना के आसपास चलनेवाली अन्य पात्रों से संबंधित घटनाओं को प्रासंगिक या गौण कथा कहा जाता है। प्रासंगिक कथा का महत्त्व विरोध या समानता दिखाकर मुख्य कथानक का रहस्य खोलने में है।

जीवनीपरक उपन्यास के अंतर्गत निश्चित ही सामान्य उपन्यास की तरह कथानक गढ़ लेनी की स्वच्छंदता नहीं होती। लेखक अपने नायक के जन्म, तिथि, जन्मस्थान, जन्म काल तथा जीवन की विभिन्न घटनाओं को ऐतिहासिक सत्य के अनुसार ही प्रस्तुत करने में बाध्य होता है। लेकिन लेखक को अपने नायक के व्यक्तित्व विकास को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए कुछ प्रासंगिक, या संभाव्य कथाओं की कल्पना करने की सुविधा अवश्य रहती है। कथा क्रम संयोजन में जीवनीकार ऐतिहासिकता का आधार लेता है मगर जीवनपरक उपन्यास में इसकी अनिवार्यता नहीं होती। यहाँ लेखक की कार्यकुशलता पर निर्भर है कि वह घटनाक्रम संयोजन कुछ इस प्रकार करे जिससे कथानायक का चरित्र अधिक प्रभावशाली बन जाए।

ब) विषयवस्तु :

कथा साहित्य के अंतर्गत कथा के आधार पर विषयवस्तु को संप्रेषित किया जाता है। इसलिए विषयवस्तु संप्रेष्य है और कथानक संप्रेषक या माध्यम। जीवनीपरक उपन्यास में यह विषयवस्तु नायक के जीवन चरित्र और व्यक्तित्त्व से संबंधित होती है।

जीवनीपरक उपन्यास की विषयवस्तु कथानायक को केंद्र में रखकर ही प्रस्तुत की जाती है। यदि वह चरित्र सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक इ. क्षेत्र प्रभावशाली व्यक्ति है तो उसे उस तरिके का उपन्यास कह सकते हैं। स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्ति होने के कारण उक्त उपन्यास को जीवनीपरक के साथ सांस्कृतिक उपन्यास भी कहा जाता है। तत्त्वों की प्रधानता से जीवनीपरक उपन्यास चरित्र प्रधान ही होते हैं।

भारतीय साहित्यशास्त्री साहित्य को 'जीवन के लिए कला' के रूप में मानते हैं। साहित्य का प्रमुख उद्देश्य 'शिवेतर क्षतये' यानी अमंगल का नाश बताया गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक छोटी-बडी विषयवस्तुओं का निर्माण होता है।

उपर्युक्त विवेचन के माध्यम से हम विषय वस्तु के संदर्भ में कह सकते हैं, कि रचना के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कथानक, पात्र एवं प्रसंगों के माध्यम से संप्रेषित होने वाला लेखक का मंतव्य या संदेश ही विषयवस्तु कहलाता है।

16809

इस तरह से देखा जा सकता है कि हर तरह के कथा साहित्य में कथावस्तु का महत्त्व अनन्यसाधारण है। इसके माध्यम से साहित्यकार के मंतव्य को दृश्य रूप मिल जाता है। जिस तरह मनुष्य मन में स्थित विचारों को कृतीद्वारा मुर्त रूप मिलता है, उसी तरह कथावस्तु लेखकीय सोच को अमुर्त से मुर्त स्वरूप दिलाने का महत्त्वपूर्ण साधन है। जीवनीपरक उपन्यासों में इस तत्त्व का महत्त्व अधिक है, क्योंकि किसी व्यक्ति विशेष के जीवन को पाठक सम्मुख उपस्थित करने के लिए घटनाओं एवं प्रसंगों का निर्माण कथानक के माध्यम से ही संभव हो पाता है।

3.4 विवेकानन्द उपन्यास की कथावस्तु :

हिंदी साहित्य के वर्तमानकालीन ख्यातनाम लेखक डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर जी का प्रस्तुत 'विवेकानन्द' उपन्यास साहित्य क्षेत्र के अंतर्गत महत्त्वपूर्ण उपलब्धी है। विवेकानन्द उपन्यास के नायक भारत एवं विश्व के महान दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द हैं। इस उपन्यास में विवेकानन्द के जीवन से संबंधित कतिपय प्रसंगों एवं घटनाओं द्वारा उनके जीवन-चरित्र को उजागर करने का सफल प्रयास हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में विवेकानन्द के सन्यासी व्रत ग्रहण कर लेने के बाद के जीवन को दिखाया गया है। जिसमें भारत भ्रमण एवं अमरिका में बितएँ दिनों के विशिष्ट घटनाओं को सम्मिलित किया है।

लेखक डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर जी ने उपन्यास की शुरूआत आँटपूर में रामकृष्ण के शिष्यों के द्वारा ली गई प्रतिज्ञा प्रसंग से की है। रामकृष्ण परमहंस के देहावसन के बाद नरेंद्र सभी गुरूभाईयों के साथ मठ की स्थापना करता है। वराहनगर मठ में वे अभावों का सामना करते हुए अध्ययन, मनन, सतसंग एवं गुरूभक्ति में जी-जान से लगे हैं। बंगाली पुलिस कर्मी द्वारा मनगढ़ंत आरोप लगाने पर नरेंद्र उसका मुँहतोंड जवाब देता है। एक दिन एक गुरूभाई सारदा प्रसन्न मठ छोड़कर भारत यात्रा पर चला जाता है। नरेंद्र पर इसका गहरा असर होता है। वह भी आश्रम की चार दिवारों को लांघकर भारत को सूक्ष्मता से जानने के लिए उतावला है।

उत्तरी भारत की छोटी-छोटी यात्राओं के बाद नरेंद्र गुरूमाता शारदादेवी का आशिर्वाद लेकर संपूर्ण भारतवर्ष की लंबी यात्रा पर निकलता है। वह प्रसिद्धि को राह की रूकावट मानता है। इसलिए समय-समय पर अलग नाम धारण करता है। अब वें 'विविदिषानंद' हैं। उनकी बात गंगा नदी से होती है, जो उनसे भारत के सामान्य जन के पुनरूद्धार की माँग

करती हैं। भारत के सामान्य, आत्मवंचित जन के दु:ख जानते हुए उस पर उपाय ढुँढते हुए वे लगातार चले जा रहे हैं।

अब नरेंद्र सच्चिदानंद बन राजस्थान के अलवर शहर में बंगाली डॉक्टर गुरूचरण लष्कर के घर में रहे हैं। उन्होंने अपने व्याख्यानों एवं सत्संग के द्वारा जन-जन में आत्मचेत के द्वार खोलें। एक मुस्लिम भक्त के आग्रह पर उसके यहाँ प्रसादी पाते हैं। वो किसी भेदाभेद को नहीं मानते। एक सत्संग में वो अपनी पुरानी बात बताते हैं। पिता के गुजर जाने से घर का व्ययभार विवेकानंद पर आ पड़ा था। उन्होंने गुरू के बताने पर काली से प्रार्थना की, प्रसन्न होने पर वह सांसारिक लाभ की जगह ज्ञान, भक्ति, वैराग्य का वरदान माँग बैठे। ऐसा कई बार हुआ। मगर उनसे व्यक्तिगत तुच्छ स्वार्थ की वस्तुएँ नहीं माँगी जा सकी।

सच्चिदानंद को अलवर में प्राप्त प्रसिद्धि के कारण वहाँ के मुर्तिपुजा को न माननेवाले एवं निराशाग्रस्त राजा मंगलसिंह उन्हें दरबार में बुलाकर अपनी शंकाएँ उनके सम्मुख उपस्थित करते हैं। स्वामीजी अपनी स्पष्टवादिता एवं निर्भिकता से सारी शंकाओं का निराकरण करते हैं। वे यात्रा के अगले पड़ाव आबु पर्वत में रहने आएँ। बरसात के दिन एक मुस्लिम भक्त के आग्रह पर उसके गृह पर रहते हुए सभी श्रद्धालुओं को अपनी अमियवाणी से उपकृत करते रहें। अब्दुल हकिम की धर्म बदलने की बात का वे विरोध करते हैं। उनका कहना हैं कि हम जिस धर्म में है उसी में रहें और अपने-आपने धर्म की बुराईयों के खिलाफ अंत तक लड़ते रहें।

इस दरम्यान खेतडी नरेश के सचिव जगमोहनलाल स्वामीजी के व्यक्तित्त्व से प्रभावित होकर उन्हें खेतडी ले जाते हैं। राजा अजित सिंग स्वामीजी की अपूर्व मेधा को पहचानकर उनसे दिक्षा ले शिष्यत्त्व ग्रहण कर लेते हैं। स्वामीजी वहाँ विज्ञान एवं खगोल के संशोधन का अध्ययन शुरू करते हैं। राजा की नि:स्वार्थ एवं बालसुलभ सेवा को देखकर उन्हें अपने बचपन की उछलकुद याद आती है। वही पर वे पंडित नारायण जी से पाणिनी व्याकरण की शिक्षा ग्रहण करते हैं। गुरूदक्षिणा में वो नारायण पंडित के हाथ से बना प्रसाद ग्रहण कर धन्य अनुभव करते हैं।

सतसंग और ध्यानधारणा यह स्वामीजी के दैनिक क्रम की आवश्यक बाते थीं। ऐसी एक दिन ध्यान के बाद उन्हें काशी यात्रा के संकट की याद आई और हँसने लगे। जब बंदरों ने उन पर हमला किया था और एक साधु द्वारा उन्हें बताया गया की डटकर खड़े रहे, उनका सामना करे। ऐसा करने पर स्वयं बंदर भाग जाते हैं। राजमहल के प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा

भारत के दुर्दशा कारण पूछने पर स्वामीजी ने दीर्घ समय से निम्न जातिवालों के साथ किए जाने वाले घृणा के भाव को उसका कारण बताया। कर्मठता के साथ भेद-भित्तियों को गिराकर सबको गले लगाने का आवाहन किया। राजमहल में मालविका नर्तकी की बातें सुनकर उनकी शेष भेदबुद्धि भी नष्ट हो जाती है। वें मालविका को अपनी माँ का दर्जा देते हैं। पाँच महिने के बाद स्वामीजी अगली यात्रा पर निकलते हैं। राजा अजितसिंग राजदरबार बुलाकर उन्हें 'विवेकानन्द' नाम देते हैं।

गुजरात में लिमड़ी राज्य में वाममार्गियों द्वारा उन्हें कैद किया जाता है। उनसे जबरदस्ती ब्रह्मचर्य दान लेने की कोशिश की जाती है। मगर वे अपनी चातुर्य बुद्धि से उस संकट से बाहर निकलने में कामयाब होते हैं। अब वे महाराष्ट्र, कर्नाटक से होते हुए कन्याकुमारी आ पहुँचे हैं। अब तक उन्होंने भारत में बसे उपेक्षित, असहाय, अभावग्रस्त और गरीबी से घिरी हुई जनता के दु:ख दर्द देखें। मगर उन समस्याओं का उपाय उन्हें सूझ नहीं रहा था। उन्होंने समुद्र में पानी से घिरी शिला देखी। उस पर समाधि लगाने का निश्चय करते हुए वें पानी में कुद पड़े। समाधि के समय उनका रामकृष्ण परमहंस (ठाकुर) से साक्षात्कार हुआ। ठाकुर ने उन्हें विदेश जाने की आज्ञा दी।

माँ कन्याकुमारी के दर्शन से लाभान्वित होकर वे फिर वापस निकल पड़े। उनकी वाणी से प्रभावित होकर म्हैसूर नरेश चामराजेंद्र वाडीयार ने स्वामीजी का भाषण फोनोग्राम पर रेकार्ड करवाया। दक्षिण भारत की भक्तमंडली द्वारा उनसे अमरिका की धर्म सभा में भाग लेने का आग्रह हुआ। जिसमें सुब्रह्मण्यम् अय्यर, आलसिंगा पेरूमल, मन्मथनाथ भट्टाचार्य आदि प्रमुख थे। धन संग्रह का कार्य शुरू हुआ। भक्तों की लाख कोशिशों के बाद जब पर्याप्त धन जमा न हो सका तो स्वामीजी ने वह धन गरिबों में बाँटने को कहा। मद्रास के उच्चशिक्षित नवयुवकों की ईसाई धर्म अपनाने के मत पर वो उसका खण्डन करते हैं। सेवा ही मानव का सबसे बड़ा धर्म बताते हैं। गरीब, भूख की मारी अभावग्रस्त जनता से उनका साक्षात्कार कराते हुए उनकी थोथली विचारधारा पर प्रहार करते हैं।

इधर उनके भक्तों ने फिर से उन्हें बिना बताएँ उनके अमरिका जाने के लिए धन-संग्रह शुरू किया। स्वामीजी को पता चलने पर वे भी धर्मसभा में भाग लेने का पक्का निर्णय कर लेते हैं। इसी बीच खेतड़ी के राजा के पुत्रप्राप्ती महोत्सव में स्वामीजी को निमंत्रण देने मुंशी

जगमोहनलाल आते हैं। लाख मना करने पर उन्हें खेतड़ी जाना पड़ता है। वहाँ वे नव युवराज को आशिर्वाद देकर बम्बई के लिए निकलते हैं। वो जगमोहन लाल व आलसिंग के साथ कुछ दिन बम्बई में रहते हैं। वहाँ के कोचवान जो भंगी का काम करता था और बहन की इज्जत पर हाथ डालने वालों को खतम करके बम्बई आया था उसे प्रायश्चित के रूप में 'माँ' नाम का 'नामस्मरण मंत्र' देते हैं। मुन्शी जगमोहनलाल स्वामीजी के जाने की सभी तैयारी को अंजाम देते हैं। 31 मई, 1893 को भक्तों से विदा लेकर स्वामीजी पी. एण्ड ओ. कंपनी के जहाज से अमरिका के लिए निकल पड़ते हैं।

स्वामीजी ने यहाँ से विवेकानन्द नाम धारण किया जो आखिर तक कायम रहा। जहाज के कप्तान रायटर, सहयात्री जर्मन दम्पत्ति हाइन्स और आन्ने इनसे परिचय करते हुए धीरे-धीरे वे जहाज के छोटे-से समाज से रू-ब-रू होते गए। जहाज में एक दिन ध्यान के बाद वे अपनी हिमालय यात्रा की यादों में खो गए। तब वे गुरूभाई अखंडानंद के साथ अल्मोडा में थे। वहाँ उन्होंने अखंडानंद को अपना ध्यानानुभव बताते हुए कहा, कि समष्टि (विश्वब्रह्मांड) और व्यष्टि (अणु ब्रह्मांड) दोनों एक ही नियम से परिचालित होते हैं।

जहाज कोलंबों होते हुए हाँगकाँग पहुँचा। भारत की तरह गरीबी व गंदगी के दर्शन से स्वामीजी अवसन्न रह गए। वे जहाज के सहयात्रियों के साथ चीनी मंदिर देखने गए। चीनियों के आक्रमक तेवर देखकर बाकी यात्री पिछे हट गए मगर स्वामीजी डटे रहें। उनकी आत्मीय वाणी से आक्रमणकारी लोगों ने तेवर बदले और स्वामीजी का स्वागत किया। उन्हें मंदिर घुमाया। संस्कृति, धर्मग्रंथों के दर्शन कराये। स्वामीजी ने देखा कि चीनी भी भारतीयों की तरह गरीब, अभावग्रस्त और अंधविश्वासों से घिरे हुए हैं।

जहाज पर डॉ. शेफॉल्ड जल में डूबकर आत्महत्या करनेवालों पर अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने स्वामीजी से इस पर चर्चा की। वे इसे समाज का नासूर बताते हैं। वे बताते हैं कि क्षीण-क्षीण करके शरीर त्यागने से कहीं बेहतर है वीरों की तरह लड़कर मरना। दूसरों के कल्याण के लिए जीवन समर्पित करना। उनके साथ संवादों में यात्रीगन मंत्रमुग्ध होते थे। जब जहाज जापान में पहुँचा तो उन्होंने ट्योक्यो शहर घूमकर देखा। साफ-सुथरे, उच्च विचार वालें, उद्योग धर्मिता पर न्योछावर लोगों से साक्षात्कार किया। भारत और जापान की तुलनात्मक सोच ने स्वामीजी को चिंतीत किया।

10 जुलाई को वे जापान के याकोहामा से कैनेडियन पॅसिफिक मार्ग के 'इम्प्रेस ऑफ इंडिया' नामक जहाज से रवाना हुए। इसी प्रवास में स्वामीजी की जगशेद टाटा से बातचीत हुई। उद्योग क्षेत्र में गहरी सोच रखनेवाले स्वामीजी से साक्षात्कार कर टाटा आश्चर्यचकित रह गए। आगे उत्तरी प्रशांत महासागर की ठंड हवाओं ने उन्हें काफी सताया। कप्तान रायटन ने उनकी परेशानी को समझते हुए उन्हें कपड़े दिए। जो विवेकानन्द ने वैंकूवर बंदरगाह में धन्यवाद के साथ वापस किए। वैंकूवर से वे रेल मार्ग से शिकागो आ पहुँचे। अपने कृष्णवर्ण तथा अलग पहनावे के कारण अमरिकावासियों के उपहास का कारण बनें। मगर इस ओर कभी भी उन्होंने ज्यादा तवज्ज़ो नहीं दिया। वो तो अमरिका की प्राकृतिक सुषमा एवं लौकिक संपन्नता और भारत की विपन्नता पर गहरे चिंतन में डूब गए।

शिकागो में उन्होंने पहली रात स्टेशन पर ही गुजारी। अगले दिन एक सस्ते हॉटल में व्यवस्था हुई। घूमकर विश्व मेला देखा। कोलंबस द्वारा अमरिका की खोज को 400 वर्ष पूरे होने की उपलब्धी में जो प्रदर्शनी शिकागो में लगाई थी उसे देखकर वे काफी प्रभावित हुए। उन्हें कुप्रचार का भी सामना करना पड़ा। राह चलते हुए वे सामान्य जन के शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का समाधान किया करते थे। शिकागो एक महँगा शहर था। वे बोस्टन चले गए। वहाँ वे एक लेखिका कथरीन एबट सनबोर्न के यहाँ रहे। उनके घर पर सतसंग का सिलसिला शुरू हुआ तो वे पूरे बोस्टन में लोकप्रिय हुए। इसी के चलते सनबोर्न ने उन्हें इनिस्काम में प्रो. जॉन हेनरी राइट के यहाँ भेजा। स्वामीजी की अपूर्व मेधा एवं ज्ञान से परिचित होकर राहट ने स्वामीजी की धर्मसभा में सम्मिलित होने हेतु परिचय पत्र देकर शिकागो रवाना किया।

शिकागो वापस आने पर श्रीमती हेल की मदद से धर्मसभा में उनका पंजीकरण संपन्न हुआ और जे. बी. ल्योन के घर पर उनके रहने की व्यवस्था हुई। 11 सितंबर को धर्म सम्मेलन के पहले दिन द्वितीय सत्र में उनका भाषण हुआ। उनकी वाणी की आत्मीयता ने प्रथम भाषण से ही अमरिकावासियों के दिल जीत लिए। उनके प्रथम भाषण से पुरे अमरिका में जादु की लहर आई थी। इसी प्रसिद्धि के साथ उन्हें कुछ इर्षालु एवं धर्मभीरू लोगों के षडयंत्र का भी सामना करना पड़ा। थियोसॉफिस्टों ने कार्नेलिया एवं मारग्रेट की मदद से उन्हें बदनाम करने की कोशिश की मगर उनके पवित्र विचार एवं सदाचरण से उन युवतियों के मन बदलें। वे नेक राह पर चल पड़ी। 27 सितंबर को धर्मसभा के भाषण में उन्होंने किसी भी तरह के धर्मांतरण

का विरोध दर्शाया। सभी धर्मों में बसे उच्च विचारों का प्रतिपादन किया। इसके सुफल में वे विश्व धरातल पर सबसे प्रभावी धर्मवेत्ता एवं धर्मसमन्वय दार्शनिक के रूप में उभरें।

धर्मसभा के बाद वे 4 साल तक अमरिका में रहे। इंग्लंड भी होकर आये। जगह -जगह भाषण दिए। वेदांत से सामान्य जन को परिचित कराया। इसी दरम्यान उनकी मुलाकात आशुलिपिक गुडविन से हुई। जिसने आगे चलकर स्वामीजी के अमूल्य भाषणों को लिखने का काम किया। सामान्य अमरिका जनता में उनके प्रति अपनापन बढ़ता गया। सुप्रसिद्ध फ्रान्सिसी गायिका एम्मा काल्वे से मुलाकात हुई। स्वामीजी ने उसे निराशा की गर्त से बाहर निकाला। उसे अपनी मानसपुत्री बनाकर शुद्ध, पावन एवं निडर जीवन का संदेश दिया।

जे. ल्योन के घर पर उनसे मिलने प्रो. एंजेलिना जोली और उनके छात्र आए। उन्होंने 'मैं' के समर्पण से व्यक्ति के अस्तित्व समाप्ति पर शंका उपस्थित की। इस पर स्वामीजी ने उन्हें बूँद और समंदर का उदाहरण बताया और कहा कि 'मैं' का समर्पण अस्तित्व का अंत नहीं, बल्कि स्व-पहचान का प्रथम कदम है। वही उनकी भेंट अमरिका के धनकुबेर जॉन डी. रॉकफेलर से हुई। स्वामीजी ने उनके अहंकार को नष्ट किया। उन्हें सत्पथ पर अग्रसर किया। रॉकफेलर को स्वामीजी का व्यक्तित्व ममतामयी माँ के समान प्रतीत हुआ।

जनवरी, 1897 को वे भारत वापस लौट आए। पुरे भारतवर्ष में उनका भारी स्वागत किया गया। विदेशी भक्त एवं शिष्यों से प्राप्त धनराशि से उन्होंने बेलूड मठ का निर्माण किया। भारत की छोटी-छोटी यात्राएँ की जिसमें मागरिट नोबेल (निवेदिता) उनके साथ रहीं। वह इंग्लंड में स्वामीजी से प्रभावित होकर भारत के अभावग्रस्त सामान्य जन की सेवा का संकल्प लेकर भारत आयी थी।

अब उनकी आयु 39 से अधिक हो चली थी। कुछ-कुछ बातों में वे अपने देहविसर्जन के संकेत दे रहे थे। अंत के कुछ दिनों में उन्होंने गरीबों को अपने हाथों से खाना खिलाया। शिष्यों को खाना परोसा, उनकी सेवा की। 4 जुलाई, 1902 को दिनभर अध्यापन का काम किया। सेवक विजेंद्र से बातचीत की। रात नौ बजकर 10 मिनट को उन्होंने आखिरी साँस ली।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

निष्कर्ष :

जीवनीपरक उपन्यास व्यक्ति विशेष के जीवनचरित्र को लेकर लिखा जाता है। जिसमें उस व्यक्ति के जीवन की समग्र अथवा आंशिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण मिलता है। डॉ. भटनागर जी ने अपने 'विवेकानन्द' उपन्यास में स्वामी विवेकानन्द के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से उनके जीवन संदेश को उजागर किया है। इस उपन्यास में विवेकानन्द से संबंधित ज्यादातर घटनाएँ इतिहास सम्मत है।

प्रस्तुत उपन्यास में स्वामी विवेकानन्द के जीवन की संपूर्ण घटनाओं का चित्रण नहीं मिलता, फिर भी जिन घटनाओं की उपस्थिति है, उससे स्वामीजी का व्यक्तित्त्व समग्र रूप में हमारे सामने प्रकट होता है। इस उपन्यास में लेखक ने विवेकानंद से संबंधित राजस्थान, गुजरात, दक्षिण भारत एवं अमरिका में घटित घटनाओं को प्रधानता से उपस्थित किया है। इन प्रसंगों के माध्यम से लेखक ने कई ऐसे दृष्टांत दिए हैं, जिससे पाठक विवेकानन्द के चरित्रगत विशेषताओं का दर्शन कर पाता है।

विवेकानन्द के यात्रानुभव को लेखक ने वार्तालाप शैली, स्मृत्यानुप्रकाशी शैली में अत्यंत रोचकता से बयां किया है। उपन्यास में पात्रों का रूपरंग, प्रकृति वर्णन एवं बातचीत के माहौल का सजीव वर्णन पाठक को उपन्यास पढ़ते-पढ़ते अतित के कालखंड में ले जाता है। इसी के परिणामस्वरूप पाठक विवेकानन्द से रू-ब-रू होने का अनुभव कर पाता है।